ईश्वर के गुण

(Attributes of God)

[विषयप्रवेश, व्यक्तित्वपूर्णता, नित्यता, सर्वज्ञता और अग्रज्ञान, सर्वशक्तिमत्ता, ईश्वर का सृष्टिकर्तृत्व, निष्कर्ष ।]

विषयप्रवेश :

धार्मिक दृष्टिकोण से सर्वप्रथम ईश्वर को उपास्य होना चाहिए । अतः, ईश्वर में वे ही सब गुण निहित समझे जाते हैं जिनसे ईश्वर की उपास्यता सिद्ध होती है । यदि कोई स्थापित करे कि ईश्वर का अस्तित्व है पर यह निश्चित न करे कि वह किस प्रकार की सत्ता है तो इससे उपासकों को सन्तोष नहीं होगा । यही कारण है कि धर्म के दृष्टिकोण से ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए तात्त्विक और विश्वमूलक प्रमाण को उतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जायगा जितना उद्देश्यमूलक और नीतिमूलक तर्कों को । तत्त्वमूलक और विश्वमूलक प्रमाण इतना ही स्थापित करने का प्रयास करते हैं कि ईश्वर अनिवार्य सत्ता है, परन्तु उद्देश्यमूलक तर्क स्पष्ट करना चाहता है कि यह अनिवार्य सत्ता सर्वज्ञ और प्रज्ञावान् भी है जिसने विश्व और मानवों की रचना किसी महान् उद्देश्यपूर्त्ति के लिए की है । नीतिमूलक तर्क एक पग आगे बढ़कर स्पष्ट करना चाहता है कि कम-से-कम ईश्वर का यह उद्देश्य अवश्य है कि मानव शुभ और कर्त्तव्यनिष्ठ बने । अतः, उपास्यता के दृष्टिकोण से ईश्वर को निर्गुण नहीं कहा जा सकता है ।

कोई सत्ता बिना किसी गुण के नहीं रह सकती और गुण भी बिना किसी पदार्थ के सम्भव नहीं हो सकते हैं । इसलिए, ईश्वर में भी ऐसे सर्वोच्च गुण पाये जाते हैं जिनके कारण उसे **अनिवार्य** सत्ता और **उपास्य** समझा जाता है । तात्त्विक दृष्टिकोण से ईश्वर को केवलैक, आध्यात्मिक, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, नित्य तथा निरपेक्ष समझा जाता है । परन्तु, धार्मिक दृष्टिकोण के आधार पर ईश्वर को व्यक्तित्वपूर्ण, सृष्टिकर्त्ता, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, शुभ-शिव, सर्वव्याप्त अतीत, सहानुभूतिशील, कृपालु तथा पवित्र माना जाता है । यहाँ धर्मदार्शनिक गुणों की ही व्याख्या की जायगी ।

Scanned by TapScanner

गुण दो प्रकार के होते हैं—तात्विक गुण और नैतिक गुण।

१. ईश्वर के तात्विक गुण (Metaphysical Attributes of God)—ये गुण ईश्वरीय सत्ता को आवश्यक रूप से अभिव्यक्त करते हैं। इन गुणों के बिना हम ईश्वर तत्व को नहीं समझ सकते। अतः ये ईश्वर के तात्विक गुण कहलाते हैं। ईश्वर के तात्विक गुण तीन हैं—सर्वशक्तिमत्ता, सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता।

१. **सर्वशक्तिमत्ता (Omnipotence)**—इसका अर्थ है कि ईश्वर सभी प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न है। Omnis का अर्थ सर्व (All) है और potens का अर्थ शक्ति-सम्पन्न (Powerful) है। अतः omnipotence का अर्थ सर्व-शक्ति-सम्पन्नता है। सर्वशक्ति-सम्पन्न के भी कई अर्थ हैं। संत आगस्ताइन के अनुसार इस शब्द का अर्थ अनन्त शक्ति (Infinite Power) है। कुछ विद्वानों

Scanned by TapScanner

के अनुसार इस शब्द का अर्थ सर्वशक्ति-सम्पन्न (All Powerful) है। कुछ लोगों का कहना है कि इस शब्द का अर्थ सर्वोपरि शासक होना है। ईश्वर सभी पर शासन करता है, क्योंकि वह सर्वशक्ति-सम्पन्न है। विश्व की सभी शक्तियाँ ईश्वर के अधीन हैं। वह परम शक्ति है, अतः परम शासक है। यथार्थ में सर्वशक्तिमत्ता का अर्थ सभी प्रकार की शक्तियों से युक्त होना है। ईश्वर कर्तुं अकर्तुं और अन्यथा कर्तुं तीनों में समर्थ है। तात्पर्य यह है कि वह जो चाहे कर सकता है, जो नहीं चाहे नहीं कर सकता है तथा यदि दूसरी प्रकार से चाहे तो दूसरी प्रकार से कर सकता है। वह पूर्णतः स्वतन्त्र है। उसकी गति का कोई अवरोधक नहीं, उसके मार्ग में कहीं बाधा नहीं। संस्कृत में ईश्वर शब्द ईश् धातु से बनता है तथा ईश् धातु का प्रयोग सामर्थ्य के अर्थ में होता है। जो समर्थ है वही ईश्वर है। असमर्थ ईश्वर तो असंगत कल्पना है। समर्थ तो मनुष्य भी है परन्तु ईश्वर में असाधारण सामर्थ्य है। वह असम्भव को सम्भव कर सकता है। इसीलिए उसे सर्व-समर्थ या सर्वशक्ति-सम्पन्न माना जाता है। सामर्थ्य का सम्बन्ध शक्ति से है। जो सर्वसमर्थ है वह सर्वशक्ति-सम्पन्न है।

धर्म-दर्शन का इतिहास यह बतलाता है कि लोगों के मन में ईश्वर का विचार शक्ति से ही प्रारम्भ हुआ। प्रकृति की भयावह शक्तियों को देख कर लोगों ने उन्हें ईश्वर की संज्ञा दी। सर्वप्रथम युग अनेकेश्वरवाद (Polytheism) का था। इस युग में अनेक शक्तियों को ईश्वर मान लिया गया। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि सभी ईश्वर के प्रतीक बन गए। बाद में एकेश्वरवाद का युग आया। इस युग में अनेक शक्तियों को एक परम शक्ति के अधीन स्वीकार किया गया। इसी प्रकार आगे चलकर इस एक शक्ति को परमेश्वर स्वीकार किया गया। अतः सभी युगों में ईश्वर शक्ति या सामर्थ्य का वाचक रहा है।

ईश्वर सर्वशक्ति-सम्पन्न है। अपनी अपार शक्तियों से ही वह चित्र-विचित्र संसार की रचना कर स्रष्टा कहलाता है। सृष्टि को उत्पन्न करना उसकी परम शक्ति या अपार सामर्थ्य का परिचायक है। कुछ लोगों का कहना है कि ईश्वर सृष्टि को उत्पन्न करने में कुछ जड़ चेतन साधनों का प्रयोग करता है। क्या वह इन साधनों से सीमित नहीं कहा जा सकता ? यदि उसे साधनों की अपेक्षा होती है तो वह निरपेक्ष कैसे हो सकता है ? यदि वह किसी साधन की सहायता लेता है तो स्वाधीन और स्वतन्त्र कैसे कहला सकता है ? परन्तु यह जान लेना आवश्यक है कि ईश्वर सर्वशक्ति-सम्पन्न है। साधनों को उत्पन्न करना भी उसी का कार्य है। वह अपनी इच्छा से साधनों को उत्पन्न कर उनसे सहायता लेता है। साधन उसे सीमित नहीं कर सकते, क्योंकि वह असीम और अनन्त है। इसी प्रकार कुछ विद्वानों का आक्षेप

Scanned by TapScanner

है कि ईश्वर सर्वशक्ति-सम्पन्न है, अतः सबका स्रष्टा है। शुभ और अशुभ दोनों को वही उत्पन्न करता है। अशुभ के कारण ही संसार में रोग, विनाश, मृत्यु और दुःख हैं। क्या ईश्वर इन अशुभ तत्वों से प्रभावित नहीं होता? दूसरी बात यह है कि वह परम दयालु तथा संसार का माता-पिता होकर भी संसार में दुःख-दैन्य, रोग, विनाश क्यों उत्पन्न करता है? स्पष्ट है कि या तो अशुभ उसकी शक्ति के बाहर है या वह दया-सागर नहीं? परन्तु यह आलोचना निराधार है। अशुभ संसार में अवश्य है और इसका भी कुछ प्रयोजन है। इसकी सत्ता भी ईश्वर की इच्छा के अधीन ही है। ईश्वर शुभ के महत्व को बढ़ाने के लिये ही अशुभ को उत्पन्न करता है। प्रकाश और अन्धकार, दिन और रात दोनों आवश्यक हैं। अन्ततोगत्वा शुभ की ही विजय होती है तथा अशुभ पराजित होता है। यही ईश्वरीय विधान है। अशुभ को उत्पन्न कर वह (ईश्वर) शुभ या कल्याण के मार्ग को और भी प्रशस्त करता है, दया और प्रेम को दरशाता है। इस प्रकार अशुभ ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का साधक है, बाधक नहीं। वह अशुभ को उत्पन्न कर अशुभ पर विजय प्राप्त करने की शक्ति भी प्रदान करता है, क्योंकि सर्वशक्तिसम्पन्न है। इसी प्रकार एक और आक्षेप किया जाता है कि ईश्वर सर्वशक्तिसम्पन्न है, अतः स्वेच्छाचारी है, जो चाहता है वही करता है, उसके ऊपर किसी का नियन्त्रण नहीं। यह भी निराधार है। ईश्वर परम स्वतन्त्र होकर भी स्वेच्छाचारी नहीं। वह सबको उत्पन्न कर सबकी व्यवस्था भी उत्पन्न करता है। व्यवस्था के लिये नियमों को बनाता है, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म का विधान करता है। इस विधान को वह स्वयं मानता है। अपने बनाये हुए विधानों के विपरीत वह कभी कार्य नहीं करता, अन्यथा जगत की व्यवस्था और संचालन असम्भव होगा। अतः ईश्वर स्वतन्त्र होकर भी अनियमित स्वेच्छाचारी कार्य नहीं करता। वह अपनी बनाई व्यवस्था में व्यतिक्रम नहीं होने देता।

२. **सर्वव्यापकता** (Omnipresence)—ईश्वर सर्वव्यापी है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर सभी स्थानों में व्याप्त है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ ईश्वर का अभाव है अथवा ईश्वर-शून्य कोई स्थान नहीं। ईश्वर समष्टिरूप, या समग्ररूप है, अतः किसी स्थान या देश को ईश्वर-शून्य नहीं स्वीकार किया जा सकता। ईश्वर विभु और विराट् रूप हैं जिसके कारण वह सर्वव्यापक माना जाता है। इससे ईश्वर की अनन्तता सिद्ध होती है, परन्तु कुछ लोग व्यापक का अर्थ विस्तार समझते हैं तथा यह मानते हैं कि ईश्वर सभी दिशाओं में विस्तृत है, परन्तु यह अर्थ उचित नहीं। ईश्वर सबका स्रष्टा है, दिशाओं की सृष्टि भी वही करता है। दिशाओं में विस्तृत होने का अर्थ यह है कि दिशाओं का अस्तित्व ईश्वर के पहले था। यह अनुचित है। इसका सही अर्थ यह है कि ईश्वर सबका स्रष्टा है तथा सृष्टि के कण-

Scanned by TapScanner

कण में ईश्वर व्याप्त है। जड़-चेतन सभी में ईश्वरीय सत्ता व्याप्त है। यही ईश्वर का सर्वव्यापक रूप है। जिस प्रकार आत्मा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है, उसी प्रकार परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि में; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि आत्मा ही शरीर है अथवा आत्मा और शरीर में अभेद है। इसका अर्थ यही है कि आत्मा अदृश्य होकर भी सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। आत्मा से अलग शरीर के किसी भी अंग का अस्तित्व नहीं।

धर्म के प्रारम्भ से ही ईश्वर को व्यापक माना जाता है। आदिम काल में स्थानीय ईश्वर की कल्पना थी। प्राकृतिक धर्म में ईश्वर की सत्ता किसी स्थान विशेष में सीमित समझी जाती थी, परन्तु आध्यात्मिक धर्म में ईश्वर को विश्व-व्यापी माना जाता है। यही ईश्वर की सर्वव्यापकता है। यह धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है। धर्म में उपासक अपने उपास्यदेव की सत्ता का सर्वत्र अनुभव करता है। अतः उपासक और उपास्यदेव के सम्पर्क के लिये ईश्वर का सर्वव्यापी होना आवश्यक है। यदि देववादी धारणा के अनुसार यह मान लिया जाय कि ईश्वर विश्व की रचना कर विश्व से अलग हो जाता है तो भक्त और भगवान में सम्पर्क असम्भव सा हो जायेगा। ईश्वर विश्व का प्राण है, विश्व के कण-कण में व्याप्त है—यही ईश्वर की सर्वव्यापकता है जो धार्मिक भावना को दृढ़ बनाती है।

३. **सर्वज्ञता (Omniscience)**—'ईश्वर सर्वज्ञ है' इसका अर्थ है कि ईश्वर सब कुछ जानता है। उसका ज्ञान पूर्ण ज्ञान कहलाता है, क्योंकि वह सभी विषयों को सभी प्रकार से जानता है। अतः सर्वज्ञ का अर्थ सर्वदा और सर्वथा ज्ञान है। वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान के विषयों को एक समान जानता है। इसीलिए उसे त्रिकालदर्शी कहते हैं। उसके लिए कोई भी वस्तु न तो अदृश्य है और न अगोचर। यह उसके अनन्त ज्ञान का परिचायक है।

मनुष्य भी ज्ञाता है परन्तु ईश्वर के समान नहीं। मानव का ज्ञान सान्त है और ईश्वर का अनन्त। मनुष्य कुछ ही विषयों को जानता है परन्तु ईश्वर सभी विषयों को जानता है। इसीलिए मनुष्य को अल्पज्ञ और ईश्वर को सर्वज्ञ कहा जाता है। मानव-ज्ञान के लिए ज्ञाता और ज्ञेय का सम्बन्ध आवश्यक है परन्तु ईश्वर के ज्ञान के लिए यह सम्बन्ध आवश्यक नहीं। इसीलिए ईश्वर के ज्ञान को अद्वैत और मानव के ज्ञान को द्वैत रूप माना गया है। मानव का ज्ञान प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों हुआ करता है परन्तु ईश्वर का ज्ञान केवल प्रत्यक्ष रूप ही है। इसीलिए कहा जाता है कि ईश्वर का ज्ञान सहज ज्ञान या सद्यः ज्ञान है, क्योंकि ईश्वर को किसी साधन की आवश्यकता नहीं। मनुष्य को ज्ञान के लिए साधनों की आवश्यकता पड़ती है। वह आधार वाक्य से निष्कर्ष का ज्ञान प्राप्त करता है, परन्तु ईश्वर बिना आधार के ही निष्कर्ष का ज्ञान प्राप्त करता है।

Scanned by TapScanner

एक आवश्यक प्रश्न यह है कि मनुष्य कैसे जानता है कि ईश्वर सर्वज्ञ है? सर्वज्ञ ही सर्वज्ञ को जान सकता है। अल्पज्ञ सर्वज्ञ को नहीं जान सकता। वस्तुतः सर्वज्ञता ज्ञान की सीमा है। इसका अर्थ है कि ईश्वर का ज्ञान असीम है। यदि उसके ज्ञान की सीमा स्वीकार की जाय तो दण्ड और पुरस्कार की योजना नहीं बन पायेगी। पाप छुपा कर किया जाता है; परन्तु सर्वज्ञ ईश्वर से यह छुप नहीं पाता। पुण्य का फल तत्काल नहीं मिलता। सर्वज्ञ ईश्वर ही कालान्तर में इसके फल का विधान करता है। इस प्रकार पाप और पुण्य के सही विधान के लिए ईश्वर को सर्वज्ञ मानना आवश्यक है। ईश्वर ही जन्म-जन्मान्तर के सभी कर्मों को जानता है और देखता है। वह कर्म के अनुसार ही फल का विधान करता है।

४. अनन्तता और नित्यता (Infinity and Eternality)—सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ होने के साथ-साथ ईश्वर को अनन्त और नित्य भी माना जाता है। अनन्त शब्द के दो अर्थ हैं—अभावात्मक और भावात्मक। अभावात्मक अर्थ में अनन्त वह है जिसका अन्त न हो; अर्थात् जो सान्त न हो। सान्त मनुष्य है और अनन्त ईश्वर। दूसरे शब्दों में, मानव ससीम है तो ईश्वर असीम। मृत्यु या विनाश ही सीमा है। मानव जरा-मरण और विनाश की सीमा को पार नहीं कर सकता, परन्तु ईश्वर इन सीमाओं के परे है, परन्तु मरण और विनाश भी ईश्वर की ही सृष्टि है। अपनी ही सृष्टि की सीमा में स्रष्टा बँध नहीं सकता। इस अर्थ से केवल यही पता चलता है कि ईश्वर असीम है। भावात्मक अर्थ में अनन्त सम्पूर्णता और स्वतन्त्रता का सूचक है। ईश्वर पूर्ण है, पूर्ण से किसी वस्तु को निकाल लेने पर शेष पूर्ण ही रहता है। मृत्यु और विनाश ईश्वर में किसी प्रकार की अपूर्णता नहीं उत्पन्न कर सकते। इसी प्रकार ईश्वर को नित्य माना जाता है। नित्य का अर्थ शाश्वत है। ईश्वर की सत्ता भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीनों कालों में समानतः विद्यमान रहती है। काल का प्रभाव ईश्वर पर नहीं पड़ता; अतः उसे कालातीत कहते हैं। मनुष्य जन्म लेता है और मरता है। जन्म के पहले और मृत्यु के बाद मनुष्य का अभाव रहता है, केवल वर्त्तमान में ही उसका भाव रहता है। ईश्वर जन्म नहीं लेता, मरता भी नहीं। अतः वह अज और अमर कहलाता है। यही ईश्वर का अनादि और नित्य रूप है। ईश्वर का नित्यत्व उसकी अनन्तता का ही परिणाम है; क्योंकि सभी सान्त अनित्य होते हैं। ईश्वर को अनन्त और नित्य मानना धर्म के लिये आवश्यक है। सान्त और अनित्य ईश्वर तो ईश्वर नहीं कहा जा सकता। ये मनुष्य के विशेषण हैं; ईश्वर के नहीं।

Scanned by TapScanner